12108CH02

अध्याय 2

दो ध्रुवीयता का अंत

बर्लिन की दीवार पूँजीवादी दुनिया और साम्यवादी दुनिया के बीच विभाजन का प्रतीक थी। 1961 में बनी यह दीवार पश्चिमी बर्लिन को पूर्वी बर्लिन से अलग करती थी। 150 किलोमीटर से भी ज्यादा लंबी यह दीवार 28 वर्षो तक खड़ी रही और आखिरकार जनता ने इसे 9 नवंबर, 1989 को तोड़ दिया। यह दोनों जर्मनी के एकीकरण और साम्यवादी खेमे की समाप्ति की शुरुआत थी। यहाँ दिए गए चित्र इसी कथाक्रम को सामने रखते हैं।

1. लोग दीवार में छोटा सा छेद कर रहें हैं।
2. मुक्त आवागमन को संभव बनाने के लिए दीवार के एक हिस्से को गिरा दिया गया है।
3. 1989 से पहले बर्लिन की दीवार

चित्र फ्रेडरिक रेम और यूनिवर्सिटी ऑफ यूटाह से साभार

परिचय

शीतयुद्ध के सबसे सरग़र्म दौर में बर्लिन-दीवार खड़ी की गई थी और यह दीवार शीतयुद्ध का सबसे बड़ा प्रतीक थी। 1989 में पूर्वी जर्मनी की आम जनता ने इस दीवार को गिरा दिया। इस नाटकीय घटना के बाद और भी नाटकीय तथा ऐतिहासिक घटनाक्रम सामने आया। इसकी परिणति दूसरी दुनिया के पतन और शीतयुद्ध की समाप्ति में हुई। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विभाजित हो चुके जर्मनी का अब एकीकरण हो गया। सोवियत संघ के खेमे में शामिल पूर्वी यूरोप के आठ देशों ने एक-एक करके जनता के प्रदर्शनों को देखकर अपने साम्यवादी शासन को बदल डाला। शीतयुद्ध के अंत के समय सोवियत संघ को यह सब चुपचाप देखते रहना पड़ा। ऐसा किसी सैन्य मजबूरी से नहीं, बल्कि आम जनता की सामूहिक कार्रवाई के दबाव के कारण हुआ। अंत में स्वयं सोवियत संघ का विघटन हो गया। इस अध्याय में हम दूसरी दुनिया के विघटन के आशय, कारण और परिणामों के बारे में चर्चा करेंगे। हम यह भी चर्चा करेंगे कि सोवियत शासन के पतन के बाद दुनिया के इस हिस्से में क्या हुआ और अब इन देशों से भारत के रिश्ते कैसे हैं।

सोवियत संघ के नेता

व्लादिमीर लेनिन
(1870–1924)
बोल्शेविक कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक; 1917 की रूसी क्रांति के नायक और क्रांति के बाद के सबसे मुश्किल दौर (1917–1924) में सोवियत समाजवादी गणराज्य के संस्थापक-अध्यक्ष; मार्क्सवाद के असाधारण सिद्धांतकार और उसे अमली जामा पहनाने में महारथी; पूरी दुनिया में साम्यवाद के प्रेरणास्रोत।

सोवियत प्रणाली क्या थी?

समाजवादी सोवियत गणराज्य (यू.एस.एस.आर.) रूस में हुई 1917 की समाजवादी क्रांति के बाद अस्तित्व में आया। यह क्रांति पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में हुई थी और समाजवाद के आदर्शों और समतामूलक समाज की ज़रूरत से प्रेरित थी। यह मानव इतिहास में निजी संपत्ति की संस्था को समाप्त करने और समाज को समानता के सिद्धांत पर सचेत रूप से रचने की सबसे बड़ी कोशिश थी। ऐसा करने में सोवियत प्रणाली के निर्माताओं ने राज्य और 'पार्टी की संस्था' को प्राथमिक महत्त्व दिया। सोवियत राजनीतिक प्रणाली की धुरी कम्युनिस्ट पार्टी थी। इसमें किसी अन्य राजनीतिक दल या विपक्ष के लिए जगह नहीं थी। अर्थव्यवस्था योजनाबद्ध और राज्य के नियंत्रण में थी।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देश सोवियत संघ के अंकुश में आ गये। सोवियत सेना ने इन्हें फासीवादी ताकतों के चंगुल से मुक्त कराया था। इन सभी देशों की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को सोवियत संघ की समाजवादी प्रणाली की तर्ज पर ढाला गया। इन्हें ही समाजवादी खेमे के देश या 'दूसरी दुनिया' कहा जाता है। इस खेमे का नेता समाजवादी सोवियत गणराज्य था।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ महाशक्ति के रूप में उभरा। अमरीका को छोड़ दें तो सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था शेष विश्व की तुलना में कहीं ज्यादा विकसित थी। सोवियत संघ की संचार प्रणाली बहुत उन्नत थी। उसके पास विशाल ऊर्जा-संसाधन था जिसमें खनिज-तेल, लोहा और इस्पात तथा मशीनरी उत्पाद शामिल हैं। सोवियत संघ के दूर-दराज के इलाके भी आवागमन की सुव्यवस्थित और विशाल प्रणाली के कारण आपस में जुड़े हुए थे। सोवियत संघ का घरेलू उपभोक्ता-उद्योग भी बहुत उन्नत था और पिन से लेकर कार तक सभी चीजों का उत्पादन वहाँ होता था। हालाँकि सोवियत संघ के उपभोक्ता उद्योग में बनने वाली वस्तुएँ गुणवत्ता के लिहाज से पश्चिमी देशों के स्तर की नहीं थीं लेकिन सोवियत संघ की सरकार ने अपने सभी नागरिकों के लिए एक न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित कर दिया था। सरकार बुनियादी ज़रूरत की चीजें मसलन स्वास्थ्य-सुविधा, शिक्षा, बच्चों की देखभाल तथा लोक-कल्याण की अन्य चीजें रियायती दर पर मुहैया कराती थी। बेरोजगारी नहीं थी। मिल्कियत का प्रमुख रूप राज्य का स्वामित्व था तथा भूमि और अन्य उत्पादक संपदाओं पर स्वामित्व होने के अलावा नियंत्रण भी राज्य का ही था।

बहरहाल, सोवियत प्रणाली पर नौकरशाही का शिकंजा कसता चला गया। यह प्रणाली सत्तावादी होती गई और नागरिकों का जीवन कठिन होता चला गया। लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की आज़ादी नहीं होने के कारण लोग अपनी असहमति अक्सर चुटकुलों और कार्टूनों में व्यक्त करते थे। सोवियत संघ की अधिकांश संस्थाओं में सुधार की ज़रूरत थी। सोवियत संघ में एक दल यानी कम्युनिस्ट पार्टी का शासन था और इस दल का सभी संस्थाओं पर गहरा अंकुश था। यह दल जनता के प्रति जवाबदेह नहीं था। जनता ने अपनी संस्कृति और बाकी मामलों की साज-संभाल अपने आप करने के लिए 15 गणराज्यों को आपस में मिलाकर सोवियत संघ बनाया था। लेकिन पार्टी ने जनता की इस इच्छा को पहचानने से इंकार कर दिया। हालाँकि सोवियत संघ के नक्शे में रूस, संघ के पन्द्रह गणराज्यों में से एक था लेकिन वास्तव में रूस का हर मामले में प्रभुत्व था। अन्य क्षेत्रों की जनता अक्सर उपेक्षित और दमित महसूस करती थी।

© NCERT not to be republished

हथियारों की होड़ में सोवियत संघ ने समय-समय पर अमरीका को बराबर की टक्कर दी लेकिन उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। सोवियत संघ प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढाँचे (मसलन - परिवहन, ऊर्जा) के मामले में पश्चिमी देशों की तुलना में पीछे रह गया। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सोवियत संघ अपने नागरिकों की राजनीतिक और आर्थिक आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका। सोवियत संघ ने 1979 में अफ़गानिस्तान में हस्तक्षेप किया। इससे सोवियत संघ की व्यवस्था और भी कमजोर हुई। हालाँकि सोवियत संघ में लोगों का पारिश्रमिक लगातार बढ़ा लेकिन उत्पादकता और प्रौद्योगिकी के मामले में वह पश्चिम के देशों से बहुत पीछे छूट गया। इससे हर तरह की उपभोक्ता - वस्तु की कमी हो गई। खाद्यान्न का आयात साल-दर-साल बढ़ता गया। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों में यह व्यवस्था लड़खड़ा रही थी और अंततः ठहर सी गयी।

गोर्बाचेव और सोवियत संघ का विघटन

मिख़ाइल गोर्बाचेव ने इस व्यवस्था को सुधारना चाहा। वे 1980 के दशक के मध्य में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव बने। पश्चिम के देशों में सूचना और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति हो रही थी और सोवियत संघ को इसकी बराबरी में लाने के लिए सुधार ज़रूरी हो गए थे। गोर्बाचेव ने पश्चिम के देशों के साथ संबंधों को सामान्य बनाने, सोवियत संघ को लोकतांत्रिक रूप देने और वहाँ सुधार करने का फ़ैसला किया। इस फ़ैसले की कुछ ऐसी भी परिणतियाँ रहीं जिनका किसी को कोई अंदाजा नहीं था। पूर्वी यूरोप के देश सोवियत खेमे के हिस्से थे। इन देशों की जनता ने अपनी सरकारों और सोवियत नियंत्रण का विरोध करना शुरू कर दिया। गोर्बाचेव के शासक रहते सोवियत संघ ने ऐसी गड़बड़ियों में उस तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जैसा अतीत में होता था। पूर्वी यूरोप की साम्यवादी सरकारें एक के बाद एक गिर गईं।

सोवियत संघ के बाहर हो रहे इन परिवर्तनों के साथ-साथ अंदर भी संकट गहराता जा रहा था और इससे सोवियत संघ के विघटन की गति और तेज हुई। गोर्बाचेव ने देश के अंदर आर्थिक-राजनीतिक सुधारों और लोकतंत्रीकरण की नीति चलायी। इन सुधार नीतियों का कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं द्वारा विरोध किया गया।

1991 में एक तख़्तापलट भी हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े गरमपंथियों ने इसे बढ़ावा दिया था। तब तक जनता को स्वतंत्रता का स्वाद मिल चुका था और वे कम्युनिस्ट पार्टी के पुरानी रंगत वाले शासन में नहीं जाना चाहते थे। येल्तसिन ने इस तख़्तापलट के विरोध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और वे नायक की तरह उभरे। रूसी गणराज्य ने, जहाँ बोरिस येल्तसिन ने आम चुनाव जीता था, केंद्रीकृत नियंत्रण को मानने से इंकार कर दिया। सत्ता मास्को से गणराज्यों की तरफ खिसकने लगी। ऐसा ख़ासकर सोवियत संघ के उन भागों में हुआ जो ज्यादा यूरोपीकृत थे और अपने को संप्रभु राज्य मानते थे। आश्चर्यजनक तौर पर मध्य-एशियाई गणराज्यों ने अपने लिए स्वतंत्रता की माँग नहीं की। वे 'सोवियत संघ' के साथ ही रहना चाहते थे। सन् 1991 के दिसम्बर में येल्तसिन के नेतृत्व में सोवियत संघ के तीन बड़े गणराज्य रूस, यूक्रेन और बेलारूस ने सोवियत संघ की समाप्ति की घोषणा की। कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिबंधित हो गई और परवर्ती सोवियत गणराज्यों

सोवियत संघ के नेता

जोजेफ स्टालिन
(1879-1953)
लेनिन के उत्तराधिकारी; सोवियत संघ के मजबूत बनने के दौर में (1924-1953) नेतृत्व किया; औद्योगीकरण को तेजी से बढ़ावा और खेती का बलपूर्वक सामूहिकीकरण; दूसरे विश्व युद्ध में जीत का श्रेय; 1930 के दशक के भयानक आतंक, पार्टी के अंदर अपने विरोधियों को कुचलने और तानाशाही रवैये के लिए जिम्मेदार ठहराए गए।

© NCERT not to be republished

सोवियत संघ के नेता

निकिता ख्रुश्चेव
(1894–1971)
सोवियत संघ के राष्ट्रपति (1953–1964); स्तालिन की नेतृत्व-शैली के आलोचक; 1956 में कुछ सुधार लागू किए; पश्चिम के साथ 'शांतिपूर्ण सहअस्तित्व' का सुझाव रखा; हंगरी के जन-विद्रोह के दमन और क्यूबा के मिसाइल संकट में शामिल।

कम्युनिस्ट पार्टी का एक अधिकारी मास्को से रवाना हुआ और सामूहिक खेती के एक 'फार्म' पर आलू की पैदावार को दर्ज करने के लिए पहुँचा।

'किसान साथी, इस साल की पैदावार कैसी रही?' अधिकारी ने पूछा।

'ईश्वर की कृपा से आलू के पहाड़ लग गये हैं' किसान ने बताया।

'लेकिन ईश्वर तो होता नहीं!' अधिकारी ने उनकी बात काटी।

'तो फिर, आलू के पहाड़ भी नहीं होते!' किसान ने जवाब दिया।

ने पूँजीवाद तथा लोकतंत्र को अपना आधार बनाया।

साम्यवादी सोवियत गणराज्य के विघटन की घोषणा और स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल (कॉमनवेल्थ ऑव इंडिपेंडेंट स्टेट्स) का गठन बाकी गणराज्यों, खासकर मध्य एशियाई गणराज्यों के लिए बहुत आश्चर्यचकित करने वाला था। ये गणराज्य अभी 'स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल' से बाहर थे। इस मुद्दे को तुरंत हल कर लिया गया। इन्हें 'राष्ट्रकुल' का संस्थापक सदस्य बनाया गया। रूस को सोवियत संघ का उत्तराधिकारी राज्य स्वीकार किया गया। रूस को सुरक्षा परिषद् में सोवियत संघ की सीट मिली। सोवियत संघ ने जो अंतर्राष्ट्रीय करार और संधियाँ की थीं उन सब को निभाने का जिम्मा अब रूस का था। सोवियत संघ के विघटन के बाद के समय में पूर्ववर्ती गणराज्यों के बीच एकमात्र परमाणु शक्ति संपन्न देश का दर्ज़ा रूस को मिला। उसने अमरीका के साथ परमाणु निरस्त्रीकरण की दिशा में कुछ कदम भी उठाए। सोवियत संघ अब नहीं रहा; वह दफ़न हो चुका था।

सोवियत संघ का विघटन क्यों हुआ?

विश्व की दूसरी सबसे बड़ी महाशक्ति अचानक कैसे बिखर गई? सिर्फ़ सोवियत संघ और साम्यवाद के अंत को समझने के लिए ही यह सवाल पूछना ज़रूरी नहीं। यह सवाल किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के पतन को समझने के लिए ज़रूरी है क्योंकि सोवियत संघ के रूप में न तो कोई राज-व्यवस्था पहली बार टूटी है और न ही आखिरी बार। सोवियत संघ के विघटन के कुछ विशेष कारण ज़रूर हो सकते हैं लेकिन इस मामले से हम एक सर्व-सामान्य सबक सीख सकते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सोवियत संघ की राजनीतिक-आर्थिक संस्थाएँ अंदरुनी कमजोरी के कारण लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकीं। यही सोवियत संघ के पतन का कारण रहा। कई सालों तक अर्थव्यवस्था गतिरुद्ध रही। इससे उपभोक्ता-वस्तुओं की बड़ी कमी हो गई और सोवियत संघ की आबादी का एक बड़ा हिस्सा अपनी राजव्यवस्था को शक की नज़र से देखने लगा; उस पर खुलेआम सवाल खड़े करने शुरू किए।

यह व्यवस्था इतनी कमज़ोर कैसे हुई और अर्थव्यवस्था में गतिरोध क्यों आया? इसका उत्तर काफी हद तक साफ है। इस सिलसिले में एक बात एकदम स्पष्ट है कि सोवियत संघ ने अपने संसाधनों का अधिकांश परमाणु हथियार और सैन्य साजो-सामान पर लगाया। उसने अपने संसाधन पूर्वी यूरोप के अपने पिछलग्गू देशों के विकास पर भी खर्च किए ताकि वे सोवियत नियंत्रण में बने रहें। इससे सोवियत संघ पर गहरा आर्थिक दबाव बना और सोवियत व्यवस्था इसका सामना नहीं

मैं हैरान हूँ! आखिर दुनियाभर के इतने सारे संजीदा लोगों ने ऐसी व्यवस्था को क्यों सराहा?

© NCERT not to be republished

कर सकी। इसी के साथ एक और बात हुई। पश्चिमी मुल्कों की तरक्की के बारे में सोवियत संघ के आम नागरिकों की जानकारी बढ़ी। वे अपनी राजव्यवस्था और पश्चिमी देशों की राजव्यवस्था के बीच मौजूद अंतर भांप सकते थे। सालों से इन लोगों को बताया जा रहा था कि सोवियत राजव्यवस्था पश्चिम के पूँजीवाद से बेहतर है लेकिन सच्चाई यह थी कि सोवियत संघ पिछड़ चुका था और अपने पिछड़ेपन की पहचान से लोगों को राजनीतिक-मनोवैज्ञानिक रूप से धक्का लगा।

सोवियत संघ प्रशासनिक और राजनीतिक रूप से गतिरुद्ध हो चुका था। सोवियत संघ पर कम्युनिस्ट पार्टी ने 70 सालों तक शासन किया और यह पार्टी अब जनता के प्रति जवाबदेह नहीं रह गई थी। गतिरुद्ध प्रशासन, भारी भ्रष्टाचार और अपनी ग़लतियों को सुधारने में व्यवस्था की अक्षमता, शासन में ज्यादा खुलापन लाने के प्रति अनिच्छा और देश की विशालता के बावजूद सत्ता का केंद्रीकृत होना - इन सारी बातों के कारण आम जनता अलग-थलग पड़ गई। इससे भी बुरी बात यह थी कि 'पार्टी' के अधिकारियों को आम नागरिक से ज्यादा विशेषाधिकार मिले हुए थे। लोग अपने को राजव्यवस्था और शासकों से जोड़कर नहीं देख पा रहे थे और सरकार का जनाधार खिसकता चला गया।

मिख़ाइल गोर्बाचेव के सुधारों में इन दोनों समस्याओं के समाधान का वायदा था। गोर्बाचेव ने अर्थव्यवस्था को सुधारने, पश्चिम की बराबरी पर लाने और प्रशासनिक ढाँचे में ढील देने का वायदा किया। गोर्बाचेव तो रोग का ठीक-ठीक निदान कर रहे थे और सुधारों को लागू करने का उनका प्रयास भी ठीक था - ऐसे में आपको आश्चर्य हो सकता है कि फिर सोवियत संघ टूटा क्यों? इस बिंदु पर आकर उत्तर ज्यादा विवादित हो जाते हैं। इस स्थिति को हमें आगे के इतिहासकार शायद ज्यादा बेहतर ढंग से समझा पाएं।

सबसे सटीक उत्तर तो यह जान पड़ता है कि जब गोर्बाचेव ने सुधारों को लागू किया और व्यवस्था में ढील दी तो लोगों की आकांक्षाओं-अपेक्षाओं का ऐसा ज्वार उमड़ा जिसका अनुमान शायद ही कोई लगा सकता था। इस पर काबू पाना एक अर्थ में असंभव हो गया। सोवियत संघ में जनता के एक तबके की सोच यह थी कि गोर्बाचेव को ज्यादा तेज गति से कदम उठाने चाहिए। ये लोग उनकी कार्यपद्धति से धीरज खो बैठे और निराश हो गए। इन लोगों ने जैसा सोचा था वैसा फायदा उन्हें नहीं हुआ या संभव है उन्हें बहुत धीमी गति से फायदा हो रहा हो। जनता के एक हिस्से ख़ासकर, कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य और वे लोग जो सोवियत व्यवस्था से फायदे में थे, के विचार ठीक इसके विपरीत थे। इनका कहना था कि हमारी सत्ता और विशेषाधिकार अब कम हो रहे हैं और गोर्बाचेव बहुत जल्दबाजी दिखा रहे हैं। इस खींचतान में गोर्बाचेव का समर्थन हर तरफ से जाता रहा और जनमत आपस में बँट गया। जो लोग उनके साथ थे उनका भी मोहभंग हुआ। ऐसे लोगों ने सोचा कि गोर्बाचेव खुद अपनी ही नीतियों का ठीक तरह से बचाव नहीं कर पा रहे हैं।

इन सारी बातों के बावजूद संभवत: सोवियत संघ का विघटन न होता। लेकिन, एक घटना ने अधिकांश पर्यवेक्षकों को चौंकाया और सोवियत व्यवस्था के अंदर के लोग भी इससे दंग रह गए। यह घटना थी राष्ट्रवादी भावनाओं और संप्रभुता की इच्छा के उभार की। रूस और बाल्टिक गणराज्य (एस्टोनिया, लताविया और लिथुआनिया), उक्रेन तथा जार्जिया जैसे

सोवियत संघ के नेता

लिओनिड ब्रेझनेव
(1906-1982)
सोवियत संघ के राष्ट्रपति (1964-1982); एशिया की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का सुझाव दिया; अमरीका के साथ संबंधों में तनाव की कमी के दौर से संबंद्ध; चेकोस्लोवाकिया के जन-विद्रोह के दमन और अफगानिस्तान पर आक्रमण में शामिल।

© NCERT not to be republished

सोवियत संघ के नेता

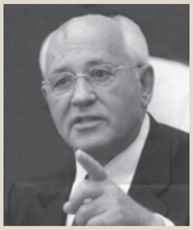

मिख़ाइल गोर्बाचेव
(जन्म 1931) सोवियत संघ के अंतिम राष्ट्रपति (1985-1991); पेरेस्त्रोइका (पुनर्रचना) और ग्लासनोस्त (खुलेपन) के आर्थिक और राजनीतिक सुधार शुरू किए; अमरीका के साथ हथियारों की होड़ पर रोक लगाई; अफगानिस्तान और पूर्वी यूरोप से सोवियत सेना वापस बुलाई; जर्मनी के एकीकरण में सहायक; शीतयुद्ध समाप्त किया; सोवियत संघ के विघटन का आरोप लगा।

सोवियत संघ के विघटन का घटना-चक्र

मार्च 1985 : मिख़ाइल गोर्बाचेव सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव चुने गए। बोरिस येल्तसिन को रूस की कम्युनिस्ट पार्टी का प्रमुख बनाया। सोवियत संघ में सुधारों की श्रृंखला शुरू की।

1988 : लिथुआनिया में आज़ादी के लिए आंदोलन शुरू। एस्टोनिया और लताविया में भी फैला।

अक्टूबर 1989 : सोवियत संघ की घोषणा कि 'वारसा समझौते' के सदस्य अपना भविष्य तय करने के लिए स्वतंत्र हैं। नवंबर में बर्लिन की दीवार गिरी।

फरवरी 1990 : गोर्बाचेव ने सोवियत संसद ड्यूमा के चुनाव के लिए बहुदलीय राजनीति की शुरुआत की। सोवियत सत्ता पर कम्युनिस्ट पार्टी का 72 वर्ष पुराना एकाधिकार समाप्त।

जून 1990 : रूसी संसद ने सोवियत संघ से अपनी स्वतंत्रता घोषित की।

मार्च 1990 : लिथुआनिया स्वतंत्रता की घोषणा करने वाला पहला सोवियत गणराज्य बना।

जून 1991 : येल्तसिन का कम्युनिस्ट पार्टी से इस्तीफा। रूस के राष्ट्रपति बने।

अगस्त 1991 : कम्युनिस्ट पार्टी के गरमपंथियों ने गोर्बाचेव के ख़िलाफ एक असफल तख़्तापलट किया।

सितंबर 1991 : एस्टोनिया, लातविया और लिथुआनिया, तीनों बाल्टिक गणराज्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य बने। (मार्च 2004 में उत्तर अटलांटिक संधि संगठन में शामिल)

दिसंबर 1991 : रूस, बेलारूस और उक्रेन ने 1922 की सोवियत संघ के निर्माण से संबद्ध संधि को समाप्त करने का फैसला किया और स्वतंत्र राष्ट्रों का राष्ट्रकुल बनाया। आर्मेनिया, अजरबैजान, माल्दोवा, कज़ाकिस्तान, किर्गिजिस्तान, ताज़िकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और उज़्बेकिस्तान भी राष्ट्रकुल में शामिल। जार्जिया 1993 में राष्ट्रकुल का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्रसंघ में सोवियत संघ की सीट रूस को मिली।

25 दिसंबर, 1991 : गोर्बाचेव ने सोवियत संघ के राष्ट्रपति के पद से इस्तीफा दिया। सोवियत संघ का अंत।

© NCERT not to be republished

सोवियत संघ के विभिन्न गणराज्य इस उभार में शामिल थे। राष्ट्रीयता और संप्रभुता के भावों का उभार सोवियत संघ के विघटन का अंतिम और सर्वाधिक तात्कालिक कारण सिद्ध हुआ। इस मसले पर भी अलग-अलग राय मिलती है।

एक विचार तो यह है कि राष्ट्रीयता की भावना और तड़प सोवियत संघ के समूचे इतिहास में कहीं-न-कहीं जारी थी और चाहे सुधार होते या न होते, सोवियत संघ में अंदरूनी संघर्ष होना ही था। खैर! यह तो इतिहास की अनिवार्यता के बारे में अनुमान लगाना हुआ लेकिन सोवियत संघ के आकार, विविधता तथा इसकी बढ़ती हुई आंतरिक समस्याओं को देखते हुए ऐसा सोचना असंगत भी नहीं है। कुछ अन्य लोग सोचते हैं कि गोर्बाचेव के सुधारों ने राष्ट्रवादियों के असंतोष को इस सीमा तक भड़काया कि उस पर शासकों का नियंत्रण नहीं रहा।

विडंबना यह है कि शीतयुद्ध के दौरान बहुत-से लोग सोचते थे कि सोवियत संघ के मध्य-एशियाई गणराज्यों में राष्ट्रवादी आकांक्षाओं का उभार सबसे दमदार होगा क्योंकि ये गणराज्य रूस से धार्मिक और नस्ली लिहाज से अलग और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए थे। लेकिन हुआ यह कि सोवियत संघ के प्रति राष्ट्रवादी असंतोष यूरोपीय और अपेक्षाकृत समृद्ध गणराज्यों – रूस, उक्रेन, जार्जिया और बाल्टिक क्षेत्र में सबसे प्रबल नज़र आया। यहाँ के आम लोग अपने को मध्य एशियाई गणराज्यों के लोगों से अलग-थलग महसूस कर रहे थे। इनका आपस में भी अलगाव था। इन गणराज्यों के लोगों में यह भाव घर कर गया कि ज्यादा पिछड़े इलाकों को सोवियत संघ में शामिल रखने की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।

विघटन की परिणतियाँ

सोवियत संघ की 'दूसरी दुनिया' और पूर्वी यूरोप की समाजवादी व्यवस्था के पतन के परिणाम विश्व राजनीति के लिहाज से गंभीर रहे। इससे मोटे तौर पर तीन प्रकार के दूरगामी परिवर्तन हुए। हर परिवर्तन के बहुत सारे प्रभाव हुए। उन सभी प्रभावों को यहाँ सूचीबद्ध करना उचित नहीं होगा।

अव्वल तो 'दूसरी दुनिया' के पतन का एक परिणाम शीतयुद्ध के दौर के संघर्ष की समाप्ति में हुआ। समाजवादी प्रणाली पूँजीवादी प्रणाली को पछाड़ पाएगी या नहीं – यह विचारधारात्मक विवाद अब कोई मुद्दा नहीं रहा। शीतयुद्ध के इस विवाद ने दोनों गुटों की सेनाओं को उलझाया था, हथियारों की तेज होड़ शुरू की थी, परमाणु हथियारों के संचय को बढ़ावा दिया था तथा विश्व को सैन्य गुटों में बाँटा था। शीतयुद्ध के समाप्त होने से हथियारों की होड़ भी समाप्त हो गई और एक नई शांति की संभावना का जन्म हुआ।

दूसरा यह कि विश्व राजनीति में शक्ति-संबंध बदल गए और इस कारण विचारों और संस्थाओं के आपेक्षिक प्रभाव में भी बदलाव आया। शीतयुद्ध के अंत के समय केवल दो संभावनाएँ थीं– या तो बची हुई महाशक्ति का दबदबा रहेगा और एकध्रुवीय विश्व बनेगा या फिर कई देश अथवा देशों के अलग-अलग समूह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण मोहरे बनकर उभरेंगे और इस तरह बहुध्रुवीय विश्व बनेगा जहाँ किसी एक देश का बोलबाला नहीं होगा। हुआ यह कि अमरीका अकेली महाशक्ति बन बैठा। अमरीका की ताकत और प्रतिष्ठा की शह पाने से अब पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभुत्वशाली अर्थव्यवस्था है। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाएँ विभिन्न

सोवियत संघ के नेता

बोरिस येल्तसिन
(1931-2007)
रूस के पहले चुने हुए राष्ट्रपति (1991-1999); कम्युनिस्ट पार्टी में सत्ता केंद्र तक पहुँचे; गोर्बाचेव द्वारा मास्को के मेयर बनाए गए; बाद में गोर्बाचेव के आलोचकों में शामिल और कम्युनिस्ट पार्टी से इस्तीफा; 1991 में सोवियत संघ के शासन के खिलाफ विरोध का नेतृत्व; सोवियत संघ के विघटन में केंद्रीय भूमिका निभाई; साम्यवाद से पूँजीवाद की ओर संक्रमण के दौरान रूसी लोगों को हुए कष्ट के लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया।

© NCERT not to be republished

मैंने किसी को कहते हुए सुना है कि, 'सोवियत संघ का अंत समाजवाद का अंत नहीं है'। क्या यह संभव है?

देशों की ताकतवर सलाहकार बन गईं क्योंकि इन देशों को पूँजीवाद की ओर कदम बढ़ाने के लिए इन संस्थाओं ने कर्ज़ दिया है। राजनीतिक रूप से उदारवादी लोकतंत्र राजनीतिक जीवन को सूत्रबद्ध करने की सर्वश्रेष्ठ धारणा के रूप में उभरा है।

तीसरी बात यह कि सोवियत खेमे के अंत का एक अर्थ था नए देशों का उदय। इन सभी देशों की स्वतंत्र पहचान और पसंद है। इनमें से कुछ देश, ख़ासकर बाल्टिक और पूर्वी यूरोप के देश 'यूरोपीय संघ' से जुड़ना और उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) का हिस्सा बनना चाहते थे। मध्य एशियाई देश अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति का फायदा उठाना चाहते थे। इन देशों ने रूस के साथ अपने मजबूत रिश्ते को जारी रखा और पश्चिमी देशों, अमरीका, चीन तथा अन्य देशों के साथ संबंध बनाए। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय फलक पर कई नए खिलाड़ी सामने आये। हरेक के हित, पहचान और आर्थिक-राजनीतिक समस्याएँ अलग-अलग थीं। आगे इन्हीं मुद्दों पर चर्चा की जाएगी।

साम्यवादी शासन के बाद 'शॉक थेरेपी'

साम्यवाद के पतन के बाद पूर्व सोवियत संघ के गणराज्य एक सत्तावादी, समाजवादी व्यवस्था से लोकतांत्रिक पूँजीवादी व्यवस्था तक के

© NCERT not to be republished

पूर्वी, मध्य यूरोप और 'स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल' का मानचित्र

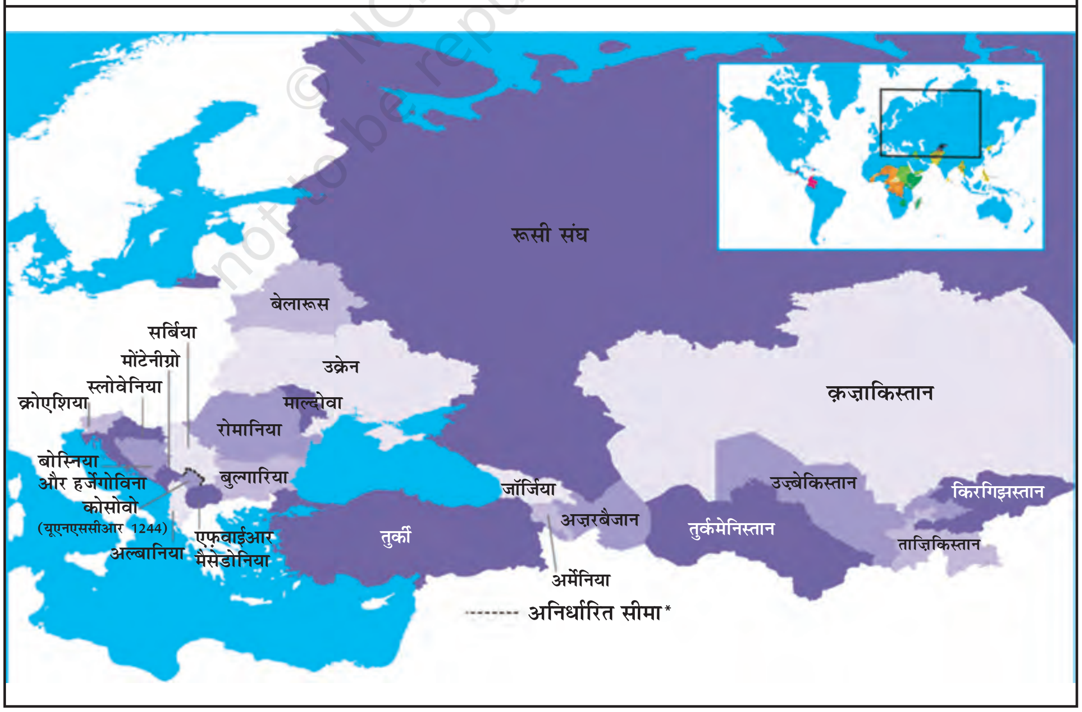

स्रोत: *https://www.unicef.org/hac2012/images/HAC2012_CEE-CIS_map_REVISED.gif*

नोट: इस मानचित्र की गई सीमाएँ एवं नाम और पदनाम संयुक्त राष्ट्र द्वारा आधिकारिक रूप से अनुमोदित या स्वीकृत नहीं है।

मानचित्र पर मध्य एशियाई देशों को चिन्हित करें।

कष्टप्रद संक्रमण से होकर गुजरे। रूस, मध्य एशिया के गणराज्य और पूर्वी यूरोप के देशों में पूँजीवाद की ओर संक्रमण का एक खास मॉडल अपनाया गया। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निर्देशित इस मॉडल को 'शॉक थेरेपी' (आघात पहुँचाकर उपचार करना) कहा गया। भूतपूर्व 'दूसरी दुनिया' के देशों में शॉक थेरेपी की गति और गहनता अलग-अलग रही लेकिन इसकी दिशा और चरित्र बड़ी सीमा तक एक जैसे थे।

हर देश को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर पूरी तरह मुड़ना था। इसका मतलब था सोवियत संघ के दौर की हर संरचना से पूरी तरह निजात पाना। 'शॉक थेरेपी' की सर्वोपरि मान्यता थी कि मिल्कियत का सबसे प्रभावी रूप निजी स्वामित्व होगा। इसके अंतर्गत राज्य की संपदा के निजीकरण और व्यावसायिक स्वामित्व के ढाँचे को तुरंत अपनाने की बात शामिल थी। सामूहिक 'फार्म' को निजी 'फार्म' में बदला गया और पूँजीवादी पद्धति से खेती शुरू हुई। इस संक्रमण में राज्य नियंत्रित समाजवाद या पूँजीवाद के अतिरिक्त किसी भी वैकल्पिक व्यवस्था या 'तीसरे रुख़' को मंजूर नहीं किया गया।

'शॉक थेरेपी' से इन अर्थव्यवस्थाओं के बाहरी व्यवस्थाओं के प्रति रुझान बुनियादी तौर पर बदल गए। अब माना जाने लगा कि ज्यादा से ज्यादा व्यापार करके ही विकास किया जा सकता है। इस कारण 'मुक्त व्यापार' को पूर्ण रूप से अपनाना ज़रूरी माना गया। पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाने के लिए वित्तीय खुलापन, मुद्राओं की आपसी परिवर्तनीयता और मुक्त व्यापार की नीति महत्त्वपूर्ण मानी गई।

अंततः इस संक्रमण में सोवियत खेमे के देशों के बीच मौजूद व्यापारिक गठबंधनों को समाप्त कर दिया गया। खेमे के प्रत्येक देश को एक-दूसरे से जोड़ने की जगह सीधे पश्चिमी मुल्कों से जोड़ा गया। इस तरह धीरे-धीरे इन देशों को पश्चिमी अर्थतंत्र में समाहित किया गया। पश्चिमी दुनिया के पूँजीवादी देश अब नेता की भूमिका निभाते हुए अपनी विभिन्न एजेंसियों और संगठनों के सहारे इस खेमे के देशों के विकास का मार्गदर्शन और नियंत्रण करेंगे।

'शॉक थेरेपी' के परिणाम

1990 में अपनायी गई 'शॉक थेरेपी' जनता को उपभोग के उस 'आनंदलोक' तक नहीं ले गई जिसका उसने वादा किया था। अमूमन 'शॉक थेरेपी' से पूरे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो गई और इस क्षेत्र की जनता को बर्बादी की मार झेलनी पड़ी। रूस में, पूरा का पूरा राज्य-नियंत्रित औद्योगिक ढाँचा चरमरा उठा। लगभग 90 प्रतिशत उद्योगों को निजी हाथों या कंपनियों को बेचा गया। आर्थिक ढाँचे का यह पुनर्निर्माण चूँकि सरकार द्वारा निर्देशित औद्योगिक नीति के बजाय बाज़ार की ताकतें कर रही थीं, इसलिए यह कदम सभी उद्योगों को मटियामेट करने वाला साबित हुआ। इसे 'इतिहास की सबसे बड़ी गराज-सेल' के नाम से जाना जाता है क्योंकि महत्त्वपूर्ण उद्योगों की कीमत कम से कम करके आंकी गई और उन्हें औने-पौने दामों में बेच दिया गया। हालाँकि इस महा-बिक्री में भाग लेने के लिए सभी नागरिकों को अधिकार-पत्र दिए गए थे, लेकिन अधिकांश नागरिकों ने अपने अधिकार-पत्र कालाबाजारियों के हाथों बेच दिये क्योंकि उन्हें धन की ज़रूरत थी।

रूसी मुद्रा रूबल के मूल्य में नाटकीय ढंग से गिरावट आई। मुद्रास्फीति इतनी ज्यादा बढ़ी कि लोगों की जमापूँजी जाती रही।

मुझे 'आघात' तो दीख रहा है लेकिन 'उपचार' कहाँ है? हम इतने बड़े-बड़े जुमलों में क्यों बोलते हैं?

© NCERT not to be republished

रूस में कुल डेढ़ हज़ार बैंक और अन्य वित्तीय संस्थान थे जिनमें से लगभग आधे 'शॉक थेरेपी' के परिणामस्वरूप दिवालिया हो गए। यह चित्र ऐसे ही एक बैंक इंकॉम का है। रूस के इस दूसरे सबसे बड़े बैंक इंकॉम के दिवालिया होने से ग्राहकों के अलावा दस हज़ार कंपनियों और शेयरधारकों की जमापूँजी भी डूब गई।

सामूहिक खेती की प्रणाली समाप्त हो चुकी थी और लोगों को अब खाद्यान्न की सुरक्षा मौजूद नहीं रही। रूस ने खाद्यान्न का आयात करना शुरू किया। सन् 1999 में वास्तविक 'सकल घरेलू उत्पाद' 1989 की तुलना में कहीं नीचे था। पुराना व्यापारिक ढाँचा तो टूट चुका था लेकिन इसकी जगह कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं हो पायी थी।

समाज कल्याण की पुरानी व्यवस्था को क्रम से नष्ट किया गया। सरकारी रियायतों के खात्मे के कारण ज्यादातर लोग ग़रीबी में पड़ गए। मध्य वर्ग समाज के हाशिए पर आ गया और अकादमिक- बौद्धिक कामों से जुड़े लोग या तो बिखर गए या बाहर चले गए। कई देशों में एक 'माफिया वर्ग' (जरायमपेशा लोग) उभरा और उसने अधिकतर आर्थिक गतिविधियों को अपने नियंत्रण में ले लिया। निजीकरण ने नई विषमताओं को जन्म दिया। पूर्व सोवियत संघ में शामिल रहे गणराज्यों और खासकर रूस में अमीर और गरीब लोगों के बीच तीखा विभाजन हो गया। पहले की व्यवस्था के विपरीत, अब धनी और निर्धन लोगों के बीच बहुत गहरी आर्थिक असमानता थी।

आर्थिक बदलाव को बड़ी प्राथमिकता दी गई और उस पर पर्याप्त ध्यान भी दिया गया लेकिन लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण का कार्य ऐसी प्राथमिकता के साथ नहीं हो सका। इन सभी देशों के संविधान हड़बड़ी में तैयार किए गए। रूस सहित अधिकांश देशों में राष्ट्रपति को कार्यपालिका प्रमुख बनाया गया और उसके हाथ में लगभग हरसंभव शक्ति थमा दी गई। फलस्वरूप संसद अपेक्षाकृत कमजोर संस्था रह गई। मध्य एशिया के देशों में राष्ट्रपति को बहुत अधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं और इनमें से कुछ सत्तावादी हो गए। मिसाल के तौर पर तुर्कमेनिस्तान और उज़्बेकिस्तान के राष्ट्रपतियों ने पहले 10 वर्षों के लिए अपने को इस पद पर बहाल किया और इसके बाद समय-सीमा को अगले 10 सालों के लिए बढ़ा दिया। इन राष्ट्रपतियों ने अपने फैसलों से असहमति या विरोध की अनुमति नहीं दी। अधिकतर देशों में न्यायिक संस्कृति और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को स्थापित करने का काम करना अभी भी बाकी है।

रूस सहित अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था ने सन् 2000 में यानी अपनी आज़ादी के 10 साल बाद खड़ा होना शुरू किया। इन अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था के पुनर्जीवन का कारण था खनिज – तेल, प्राकृतिक गैस और धातु जैसे प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात। रूस, कज़ाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उज़्बेकिस्तान और अज़रबैजान तेल और गैस के बड़े उत्पादक देश हैं। बाकी देशों को अपने क्षेत्र से तेल की पाईप-लाइन गुजरने के कारण फायदा हुआ। इस एवज में इन्हें किराया मिलता है। एक हद तक विनिर्माण का काम भी फिर शुरू हुआ।

संघर्ष और तनाव

पूर्व सोवियत संघ के अधिकांश गणराज्य संघर्ष की आशंका वाले क्षेत्र हैं। अनेक गणराज्यों ने गृहयुद्ध और बग़ावत को झेला है। इसके साथ-साथ इन देशों में बाहरी ताकतों की दखल भी बढ़ी है। इससे स्थिति और भी जटिल हुई है।

रूस के दो गणराज्यों चेचन्या और दाग़िस्तान में हिंसक अलगाववादी आंदोलन चले। मास्को ने चेचन विद्रोहियों से निपटने के जो तरीके अपनाये और जिस ग़ैर-जिम्मेदार तरीके से सैन्य बमबारी की उसमें मानवाधिकार का व्यापक उल्लंघन हुआ लेकिन इससे आज़ादी की आवाज दबायी नहीं जा सकी।

आखिर राष्ट्रवाद और अलगाववाद में अंतर क्या है? अगर आप कामयाब हो जाते हैं तो राष्ट्रीय नायक कहलाते हैं और अगर नाकामयाब रह जाते हैं तो अलगाववाद फैलाने के अपराधी ठहराए जाते हैं।

© NCERT not to be republished

मध्य एशिया में, तज़िकिस्तान दस वर्षों यानी 2001 तक गृहयुद्ध की चपेट में रहा। इस पूरे क्षेत्र में कई सांप्रदायिक संघर्ष चल रहे हैं। अज़रबैज़ान का एक प्रांत नगरनों कराबाख है। यहाँ के कुछ स्थानीय अर्मेनियाई अलग होकर अर्मेनिया से मिलना चाहते हैं। जार्जिया में दो प्रांत स्वतंत्रता चाहते हैं और गृहयुद्ध लड़ रहे हैं। यूक्रेन, किरगिझस्तान तथा जार्जिया में मौजूदा शासन को उखाड़ फेकने के लिए आंदोलन चल रहे हैं। कई देश और प्रांत नदी-जल के सवाल पर आपस में भिड़े हुए हैं। इन सारी बातों की वज़ह से अस्थिरता का माहौल है और आम नागरिक का जीवन दूभर है।

मध्य एशियाई गणराज्यों में हाइड्रोकार्बनिक (पेट्रोलियम) संसाधनों का विशाल भंडार है। इससे इन गणराज्यों को आर्थिक लाभ हुआ है लेकिन इसी कारण से यह क्षेत्र बाहरी ताकतों और तेल कंपनियों की आपसी प्रतिस्पर्धा का अखाड़ा भी बन चला है। यह क्षेत्र रूस, चीन और अफ़गानिस्तान से सटा है तथा पश्चिम एशिया से नजदीक है। 11 सितंबर 2001 की घटना के बाद अमरीका इस क्षेत्र में सैनिक ठिकाना बनाना चाहता था। उसने किराए पर ठिकाने हासिल करने के लिए मध्य एशिया के सभी राज्यों को भुगतान किया और अफ़गानिस्तान तथा इराक में युद्ध के दौरान इन क्षेत्रों से अपने विमानों को उड़ाने की अनुमति ली। रूस इन राज्यों को अपना निकटवर्ती 'विदेश' मानता है और उसका मानना है कि इन राज्यों को रूस के प्रभाव में रहना चाहिए। खनिज-तेल जैसे संसाधन की मौजूदगी के कारण चीन के हित भी इस क्षेत्र से जुड़े हैं और चीनियों ने सीमावर्ती क्षेत्रों में आकर व्यापार करना शुरू कर दिया है।

पूर्वी यूरोप में चेकोस्लोवाकिया शांतिपूर्वक दो भागों में बँट गया। चेक तथा स्लोवाकिया नाम के दो देश बने। लेकिन सबसे गहन संघर्ष बाल्कन क्षेत्र के गणराज्य युगोस्लाविया में हुआ। सन् 1991 में बाद युगोस्लाविया कई प्रांतों में टूट गया और इसमें शामिल बोस्निया-हर्जेगोविना, स्लोवेनिया तथा क्रोएशिया ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। यहाँ 'नाटो' को हस्तक्षेप करना पड़ा; युगोस्लाविया पर बमबारी हुई और जातीय संघर्ष ने गृहयुद्ध का रूप लिया।

खुद करें, खुद सोचें

भारत और सोवियत संघ की आर्थिक और राजनीतिक विचारधाराओं की समानताओं की एक सूची बनाएँ।

उज़्बेकिस्तान में हिंदुस्तानी फिल्मों की धूम

सोवियत संघ को विघटित हुए सात साल बीत गये लेकिन हिंदी फिल्मों के लिए उज़्बेक लोगों में वही ललक मौजूद है। हिन्दुस्तान में कोई नई फिल्म रिलीज हुई नहीं कि चंद हफ्तों के भीतर इसकी पाइरेटेड कापियाँ उज़्बेकिस्तान की राजधानी ताशकंद में बिकने के लिए उपलब्ध हो जाती हैं। ताशकंद के एक बड़े बाज़ार के नज़दीक हिन्दी फिल्मों की एक दुकान मुहम्मद शरीफ़ पत की है। मुहम्मद शरीफ़ अफगानी हैं और पाकिस्तान के सीमाप्रांत के शहर पेशावर से वीडियो मंगाते हैं। उनका कहना है – ''यहाँ हिंदी फिल्मों के बहुतेरे दीवाने हैं। मैं तो कहूँगा कि ताशकंद के 70 फीसदी लोग इन फिल्मों को खरीदते हैं। हम लोग रोजाना लगभग 100 वीडियो बेच लेते हैं। मैंने अभी-अभी 1000 और वीडियो का 'आर्डर' दिया है। उज़्बेक लोग मध्य एशियाई हैं; वे एशिया के अंग हैं। उनकी एक साझी संस्कृति है। इसी कारण वे लोग भारतीय फिल्मों को पसंद करते हैं।''

साझे इतिहास के बावजूद भारतीय फिल्मों और उनके 'हीरो' के लिए उज़्बेकी लोगों की दीवानगी उज़्बेकिस्तानवासी अनेक भारतीयों को आश्चर्यजनक जान पड़ती है। ताशकंद स्थित भारतीय दूतावास के अशोक शमर बताते हैं- "हम जहाँ भी जाते हैं और स्थानीय अधिकारियों से मिलते हैं – काबीना मंत्री तक – बातचीत में हमेशा इसका जिक्र करते हैं। इससे पता चलता है कि भारतीय फिल्म, संस्कृति, गीत और ख़ास तौर पर राजकपूर यहाँ घर-घर जाने जाते हैं। यहाँ अधिकांश लोग हिंदी गीत गा लेते हैं। अर्थ चाहे न मालूम हों लेकिन उनका उच्चारण सही होता है और वे संगीत भी पकड़ लेते हैं। मैंने पाया कि मेरे सारे पड़ोसी हिंदी गीत बजाते हैं और गा लेते हैं। मैं जब उज़्बेकिस्तान आया तो यह मेरे लिए सचमुच बहुत आश्चर्य की बात थी।"

– *बीबीसी के मध्य एशिया संवाददाता लुईस हिदाल्गो की* रिपोर्ट

© NCERT not to be republished

भारत और सोवियत संघ

शीतयुद्ध के दौरान भारत और सोवियत संघ के संबंध बहुत गहरे थे। इससे आलोचकों को यह कहने का अवसर भी मिला कि भारत सोवियत खेमे का हिस्सा था। इस दौरान भारत और सोवियत संघ के संबंध बहुआयामी थे।

आर्थिक – सोवियत संघ ने भारत के सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की ऐसे वक्त में मदद की जब ऐसी मदद पाना मुश्किल था। सोवियत संघ ने भिलाई, बोकारो और विशाखापट्टनम के इस्पात कारखानों तथा भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स जैसे मशीनरी संयंत्रों के लिए आर्थिक और तकनीकी सहायता दी। भारत में जब विदेशी मुद्रा की कमी थी तब सोवियत संघ ने रुपये को माध्यम बनाकर भारत के साथ व्यापार किया।

राजनीतिक – सोवियत संघ ने कश्मीर मामले पर संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के रुख को समर्थन दिया। सोवियत संघ ने भारत के संघर्ष के गाढ़े दिनों, ख़ासकर सन् 1971 में पाकिस्तान से युद्ध के दौरान मदद की। भारत ने भी सोवियत संघ की विदेश नीति का अप्रत्यक्ष, लेकिन महत्त्वपूर्ण तरीके से समर्थन किया।

सैन्य – भारत को सोवियत संघ ने ऐसे वक्त में सैनिक साजो-सामान दिए जब शायद ही कोई अन्य देश अपनी सैन्य टेक्नालॉजी भारत को देने के लिए तैयार था। सोवियत संघ ने भारत के साथ कई ऐसे समझौते किए जिससे भारत संयुक्त रूप से सैन्य उपकरण तैयार कर सका।

संस्कृति – हिंदी फिल्म और भारतीय संस्कृति सोवियत संघ में लोकप्रिय थे। बड़ी संख्या में भारतीय लेखक और कलाकारों ने सोवियत संघ की यात्रा की।

पूर्व-साम्यवादी देश और भारत

भारत ने साम्यवादी रह चुके सभी देशों के साथ अच्छे संबंध कायम किए हैं लेकिन भारत के संबंध रूस के साथ सबसे ज्यादा गहरे हैं। भारत की विदेश नीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू भारत का रूस के साथ संबंध है। भारत-रूस संबंधों का इतिहास आपसी विश्वास और साझे हितों का इतिहास है। भारत-रूस के आपसी संबंध इन देशों की जनता की अपेक्षाओं से मेल खाते हैं। भारतीय हिन्दी फिल्मों के नायकों में राजकपूर से लेकर अमिताभ बच्चन तक रूस और पूर्व सोवियत संघ के बाकी गणराज्यों में घर-घर जाने जाते हैं। आप इस क्षेत्र में हिंदी फिल्मी गीत बजते सुन सकते हैं और भारत यहाँ के जनमानस का एक अंग है।

आओ मिलजुल कर करें

चरण

- सोवियत और अमरीकी दोनों खेमों के शीतयुद्ध के दौर के पाँच-पाँच देशों को चुनें।
- इसी के अनुरूप कक्षा में समूह बनायें। हर समूह को एक देश का जिम्मा सौंपें। प्रत्येक समूह अपने-अपने हिस्से के देश के बारे में यह जानकारी जुटाए कि शीतयुद्ध के दौर में वहाँ के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हालात कैसे थे?
- हर समूह यह जानकारी भी जुटाए की साम्यवाद के पतन के बाद उस देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति क्या हुई। संभव हो तो हर समूह यह भी बताए कि दूसरी दुनिया के विघटन का प्रभाव उस देश पर क्या हुआ?
- हर समूह अपने निष्कर्ष कक्षा के सामने रखे। इन देशों के लोग बतौर नागरिक अपने बारे में क्या महसूस कर रहे थे – इस विषय पर छात्रों की बातचीत को सुनिश्चित करें।

अध्यापकों के लिए

- आप छात्रों के निष्कर्ष को लोकतांत्रिक और साम्यवादी व्यवस्था के सिद्धांत और व्यवहार से जोड़ सकते हैं और प्रत्येक के गुण-दोष को रेखांकित कर सकते हैं।
- क्या साम्यवाद और पूँजीवाद का कोई विकल्प हो सकता है – छात्रों को इस विषय पर चर्चा करने के लिए बढ़ावा दें।

© NCERT not to be republished

रूस और भारत दोनों का सपना बहध्रुवीय विश्व का है। बहुध्रुवीय विश्व से इन दोनों देशों का आशय यह है कि अंतर्राष्ट्रीय फलक पर कई शक्तियाँ मौजूद हों; सुरक्षा की सामूहिक जिम्मेदारी हो (यानी किसी भी देश पर हमला हो तो सभी देश उसे अपने लिए खतरा मानें और साथ मिलकर कार्रवाई करें); क्षेत्रीयताओं को ज्यादा जगह मिले; अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों का समाधान बातचीत के द्वारा हो; हर देश की स्वतंत्र विदेश नीति हो और संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाओं द्वारा फैसले किए जाएँ तथा इन संस्थाओं को मजबूत, लोकतांत्रिक और शक्तिसंपन्न बनाया जाय। 2001 के भारत-रूस सामरिक समझौते के अंग के रूप में भारत और रूस के बीच 80 द्विपक्षीय दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर हुए हैं।

भारत को रूस के साथ अपने संबधों के कारण कश्मीर, ऊर्जा-आपूर्ति, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से संबंधित सूचनाओं के आदान-प्रदान, पश्चिम एशिया में पहुँच बनाने तथा चीन के साथ अपने संबंधों में संतुलन लाने जैसे मसलों में फायदे हुए हैं। रूस को इस संबंध से सबसे बड़ा फायदा यह है कि भारत रूस के लिए हथियारों का दूसरा सबसे बड़ा खरीददार देश है। भारतीय सेना को अधिकांश सैनिक साजो-सामान रूस से प्राप्त होते हैं। चूँकि भारत तेल के आयातक देशों में से एक है इसलिए भी भारत रूस के लिए महत्त्वपूर्ण है। उसने तेल के संकट की घड़ी में हमेशा भारत की मदद की है। भारत रूस से अपने ऊर्जा-आयात को भी बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। ऐसी कोशिश कज़ाकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान के साथ भी चल रही है। इन गणराज्यों के साथ सहयोग के अंतर्गत तेल वाले इलाकों में साझेदारी और निवेश करना भी शामिल है। रूस भारत की परमाण्विक योजना के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। रूस ने भारत के अंतरिक्ष उद्योग में भी ज़रूरत के वक्त क्रायोजेनिक रॉकेट देकर मदद की है। भारत और रूस विभिन्न वैज्ञानिक परियोजनाओं में साझीदार हैं।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. सोवियत अर्थव्यवस्था की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन ग़लत है?
   (क) सोवियत अर्थव्यवस्था में समाजवाद प्रभावी विचारधारा थी।
   (ख) उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व/नियंत्रण होना।
   (ग) जनता को आर्थिक आज़ादी थी।
   (घ) अर्थव्यवस्था के हर पहलू का नियोजन और नियंत्रण राज्य करता था।

2. निम्नलिखित को कालक्रमानुसार सजाएँ?
   (क) अफ़गान-संकट
   (ख) बर्लिन-दीवार का गिरना
   (ग) सोवियत संघ का विघटन
   (घ) रूसी क्रांति

3. निम्नलिखित में कौन-सा सोवियत संघ के विघटन का परिणाम नहीं है?
   (क) संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच विचारधारात्मक लड़ाई का अंत
   (ख) स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल (सीआईएस) का जन्म

प्रश्नावली

(ग) विश्व-व्यवस्था के शक्ति-संतुलन में बदलाव
(घ) मध्यपूर्व में संकट

4. निम्नलिखित में मेल बैठाएं –

(1) मिख़ाइल गोर्बाचेव	(क) सोवियत संघ का उत्तराधिकारी
(2) शॉक थेरेपी	(ख) सैन्य समझौता
(3) रूस	(ग) सुधारों की शुरुआत
(4) बोरिस येल्तसिन	(घ) आर्थिक मॉडल
(5) वारसॉ	(ङ) रूस के राष्ट्रपति

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
(क) सोवियत राजनीतिक प्रणाली .... की विचारधारा पर आधारित थी।
(ख) सोवियत संघ द्वारा बनाया गया सैन्य गठबंधन .... था।
(ग) .... पार्टी का सोवियत राजनीतिक व्यवस्था पर दबदबा था।
(घ) .... ने 1985 में सोवियत संघ में सुधारों की शुरुआत की।
(ङ) .... का गिरना शीतयुद्ध के अंत का प्रतीक था।

6. सोवियत अर्थव्यवस्था को किसी पूँजीवादी देश जैसे संयुक्त राज्य अमरीका की अर्थव्यवस्था से अलग करने वाली किन्हीं तीन विशेषताओं का जिक्र करें।

7. किन बातों के कारण गोर्बाचेव सोवियत संघ में सुधार के लिए बाध्य हुए?

8. भारत जैसे देशों के लिए सोवियत संघ के विघटन के क्या परिणाम हुए?

9. शॉक थेरेपी क्या थी? क्या साम्यवाद से पूँजीवाद की तरफ संक्रमण का यह सबसे बेहतर तरीका था?

10. निम्नलिखित कथन के पक्ष या विपक्ष में एक लेख लिखें – ''दूसरी दुनिया के विघटन के बाद भारत को अपनी विदेश-नीति बदलनी चाहिए और रूस जैसे परंपरागत मित्र की जगह संयुक्त राज्य अमरीका से दोस्ती करने पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।''

© NCERT not to be republished